दुनिया के मज़दूर-वर्ग पर कोरोना का असर : 14 वां समाचार-पत्र (2020)

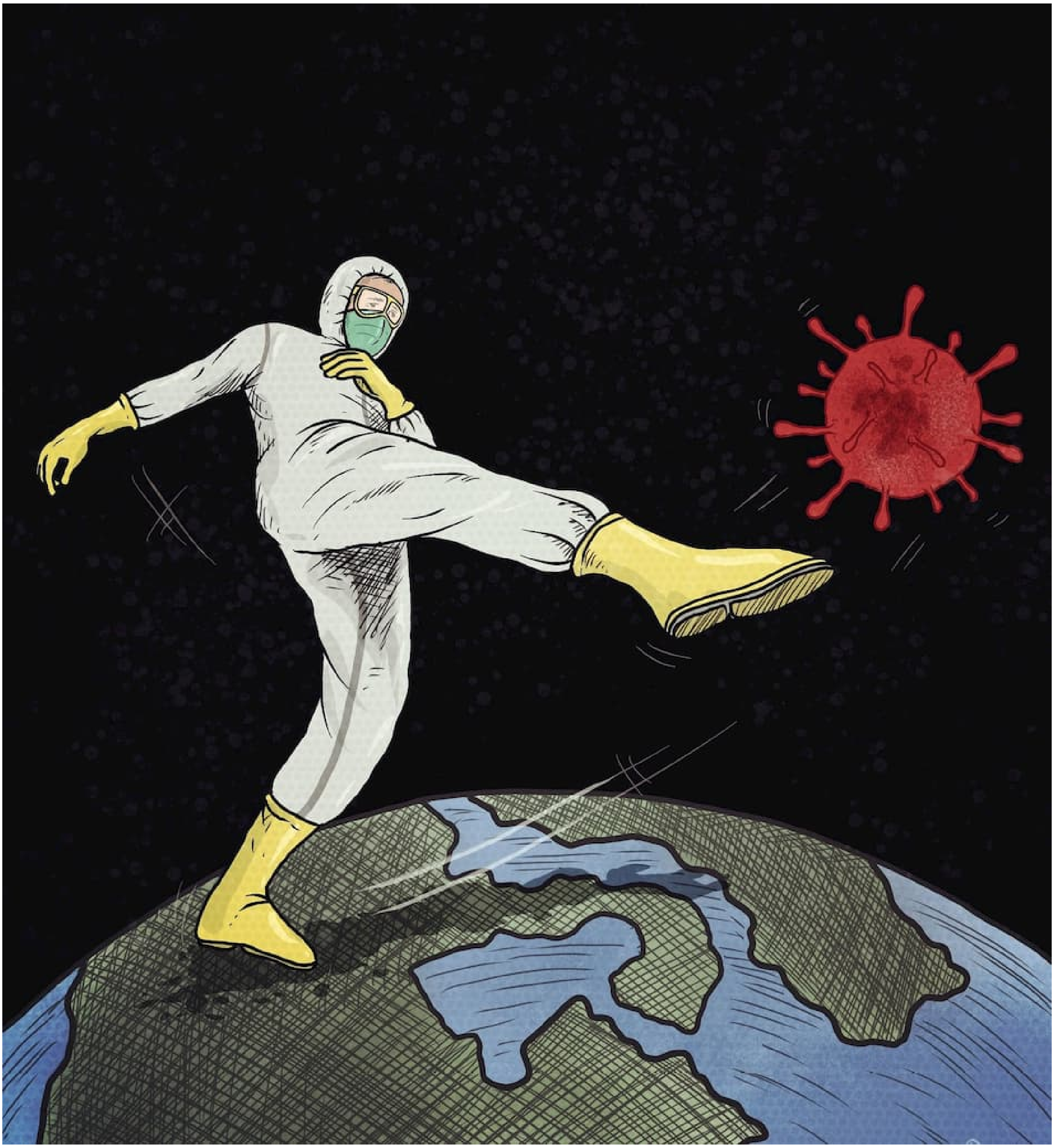

मीर सुहेल : मुश्किल लक्ष्य, 2020.

प्यारे दोस्तों,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

दुनिया पर पागलपन सवार है। हज़ारों-लाखों लोग अपने घरों में बंद हैं, लाखों लोग जो मूलभूत सेवाओं से जुड़ी नौकरियां करते हैं या जो राज्य-सहायता के बिना घर बैठने का जोखिम नहीं उठा सकते वे काम पर जा रहे हैं, हजारों लोग ICU में

हैं और दसियों-हजार चिकित्सा कर्मी व सहायक उपकरणों और समय के अभाव में भी उनकी देखभाल कर रहे हैं। मानव आबादी के छोटे से हिस्से – अरबपतियों – को लगता है कि वे अपने महलों में सुरक्षित हैं, लेकिन ये वायरस कोई सीमा नहीं जानता SARS-CoV-2 वायरस के ही दूसरे रूप से फैल रही इस वैश्विक महामारी ने सभी को अपनी चपेट में ले लिया है ; हालाँकि चीन ने इसके संक्रमण पर लगाम लगाई है, लेकिन बाकी दुनिया में संक्रमण के आँकड़े लगातार ऊपर की ओर जा रहे हैं: सुरंग के अंत में रोशनी उतनी ही मंद है जितनी कि हमेशा से रही है।

अक्षम और हृदयहीन सरकारों ने बंद/लॉक-डाउन करने का ऐलान कर दिया है, उन लोगों की चिंता किए बिना ही जिनके पास न के बराबर संसाधन हैं। उनकी मदद के लिए किसी भी प्रकार की कोई योजना नहीं बनाई गयी। घर पर रहते हुए, इंटरनेट का उपयोग कर काम कर लेना और अपने बच्चों को भी पढ़ा पाना कुलीन वर्ग या मध्यम वर्ग के लिए आसान है ; लेकिन प्रवासी मज़दूरों, दिहाड़ी मज़दूरों, ऐसे लोग जो रोज़ कमाते-खाते हैं, या वो जिनके पास घर ही नहीं है, उनके लिए घरों में बंद रहने की सोचना भी मुश्किल है। इन अरबों लोगों के लिए लॉक-डाउन, क्वारनटाइन, सामाजिक दूरी जैसे शब्दों का कोई मतलब नहीं है। ये वही लोग हैं जो सामाज का पुन :उत्पादन भी करते हैं और लाखों उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं; जिन्हें ख़ुद अपनी मेहनत का कोई लाभ नहीं मिलता, जिनकी मेहनत हड़प कर मुट्ठी-भर लोग अमीर हो गए हैं। ये अमीर अब इन्हें अमीर बनाने वाले यथार्थ से डर कर अपने धन के साथ पर्दों के पीछे छिपे हुए हैं।

विटो बोंजीओर्नो, टेर्ज़ो मिलेनियो, 2011.

इटालियन लेखक फ्रांसेस्का मलैंडरी ने अपने 'लेटर टू द फ्रेंच फ्रॉम द फ्यूचर' (**लिबेरेशन**, 18 मार्च) में लिखा है, 'वर्ग से ही सारा फ़र्क़ पड़ेगा। एक सुंदर बगीचे के साथ अपने घर में बंद होना एक भीड़भाड़ वाली आवास परियोजना में रहने के समान नहीं है। न ही घर से काम कर पाना अपनी नौकरी खोते हुए देखने के जैसा है। इस महामारी को हराने के लिए जिस नाव में आप सवार हैं, वो सबको एक जैसी नहीं दिखती, ये वास्तव में सब के लिए एक समान है ही नहीं : यह कभी भी एक समान नहीं थी'। ओलु टिमहिन एडेबेय ने अपने शहर लागोस (नाइजीरिया) के साठ लाख दिहाड़ी मजदूरों पर रिपोर्ट **लिखी** है ; यदि ये मज़दूर कोरोनावायरस से बच भी जाते हैं, तो वे भूख से मर जाएंगे (इनमें भी सबसे ज्यादा ख़तरा महिलाओं और लड़कियों पर है, जो अपने परिवार में बीमारों की देखभाल कर रही होंगी और चिकित्सा कर्मियों की तरह संभवत: बड़ी संख्या में कोरोनावायरस की शिकार हो जाएँगी)। ओलु टिमहिन एडेबेय की रिपोर्ट मलैंडरी के वाक्यांश की छवि हैं। दक्षिण अफ्रीका में सरकारें मज़दूरों को बस्तियाँ/झोंपड़ियाँ ख़ाली करने के लिए धमका रही हैं, उनका कहना है कि इस समय इन भीड़भाड़ वाले क्षेत्रों को तोड़ने की ज़रूरत है ; केपटाउन के **एनडीफुना उकवाज़ी** के एक्सोलिल नोटवाला **कहते** हैं कि "घनत्व कम करना' ज़बरदस्ती बेदखल करने का वैकल्पिक नाम है'। कोरोना के आतंक में दुनिया के मज़दूर वर्ग के साथ यही हो रहा है।

राम रहमान, दिल्ली के कश्मीरी गेट अंतर्राज्यीय बस अड्डे के पास मज़दूर, 28 मार्च 2020.

दिल्ली (भारत) के आनंद विहार बस अड्डे पर असमानता का सबसे बड़ा प्रदर्शन लगा, जहाँ देश बंद होने के बाद हज़ारों फ़ैक्ट्री मज़दूर और सेवा क्षेत्र के मज़दूर गाल से गाल सटाए खड़े थे। हमारे वरिष्ठ अध्येता, पी. साईनाथ, **लिखते** हैं कि मज़दूर वर्ग के पास 'परिवहन के साधन के रूप में अब केवल उनके अपने पैर ही उपलब्ध हैं। कुछ लोग घर तक साइकिल चला कर जा रहे हैं। ट्रेन, बसें और अन्य गाड़ियों के बंद हो जाने के कारण कई लोग बीच-रास्ते फँसे हुए हैं। ये चलन यदि बढ़ता है तो स्थिति बहुत भयावह हो जाएगी। कल्पना करें बड़े-बड़े समूहों में लोग पैदल घर जा रहे हों, गुजरात के शहरों से निकल कर राजस्थान के गाँवों तक ; हैदराबाद से निकल कर तेलंगाना और आंध्र प्रदेश के दूर-दराज गाँवों तक ; दिल्ली से निकल कर उत्तर प्रदेश और बिहार के विभिन्न इलाक़ों तक ; मुंबई से निकल कर न जाने कहाँ-कहाँ तक। यदि उन्हें कोई राहत-सहायता नहीं मिली, तो भोजन और पानी तक उनकी लगातार घटती जा रही पहुंच तबाही मचा देगी। वे उलटी-दस्त और हैजा जैसी कई पुरानी बीमारियों के शिकार हो सकते हैं।'

30 साल के नीरज कुमार एक कपड़ा फैक्ट्री में काम करते हैं, जहां मजदूरों को पीस-रेट के हिसाब से वेतन मिलता है। 'हमारे पास कोई पैसा नहीं बचा है', उन्होंने **द वायर** को बताया। 'मेरे दो बच्चे है। मैं क्या करूंगा ? हम किराए के घर में रहते हैं और हमारे पास कोई पैसा और कुछ भी खाने के लिए नहीं बचा है।' नीरज को दो सौ किलोमीटर दूर बदायूं जाना है। मुकेश कुमार मधुबनी (बिहार) से हैं और उनके आगे 1,150 किलोमीटर की यात्रा है। वो एक छोटे होटल में काम करते थे, जहाँ उन्हें मजदूरी के हिस्से के रूप में ही खाना भी मिलता था। लेकिन अब होटल बंद है। 'मेरे पास पैसे नहीं बचे हैं', उन्होंने कहा। 'मेरे यहाँ कोई नहीं है जो संक्रमित होने पर मेरी देखभाल कर सकेगा। इसलिए, मैं जा रहा हूं।'

ट्राईकॉनटिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान के दिल्ली कार्यालय ने कपड़ा मज़दूरों का एक सर्वेक्षण किया, जिनमें से अधिकांश के पास स्थायी नौकरी नहीं है। 'हम यहां काम के लिए आए हैं', एक मज़दूर ने हमें बताया। 'हम अपने परिवार अपने गांवों में छोड़ कर आए हैं। हम ज्यादा से ज्यादा काम करने की कोशिश करते हैं ताकि अपने परिवारों को खिलाने के लिए और उन्हें पैसे भेजने के लिए थोड़ी और कमाई कर सकें'। हमने जितने मज़दूरों से बात की, उनमें से तीन-चौथाई ने कहा कि वे अपने परिवार में एकमात्र कमाने वाले हैं; कृषि संकट ने उनके बाक़ी परिवार-वालों की कमा पाने की क्षमता नष्ट कर दी है, जो कि अब इन प्रवासी मज़दूरों द्वारा भेजे जाने वाले पैसे पर ही जीवन निर्वहन करते हैं; उनके परिवार वाले गांव में पारिवारिक जीवन के सामाजिक उत्पादन में अवैतनिक श्रम ज़रूर करते हैं। यही मज़दूर सरकार से समर्थन न मिल पाने की सूरत में घर वापस लौट रहे हैं, कृषि संकट से झूझते गावों में। इनमे से कुछ अपने साथ कोरोनोवायरस भी ले जा रहे होंगे।

राम रहमान, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 28 मार्च 2020.

जब मज़दूरों के समूह दिल्ली छोड़ कर जा रहे थे तो ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान के एक शोधकर्ता उमेश यादव ने लिखा कि, 'ये प्रवासी मज़दूर अचानक आसमान से नहीं गिरे हैं। ये शहरों के कोनों में हमेशा से रहते रहे हैं, तंग

बस्तियों और झुग्गियों में; अभिजात वर्ग ने इन्हें जानबूझकर अदृश्य और अज्ञात बनाए रखा है’। आज जब ये मज़दूर शहर से जाने वालों की लम्बी क़तारों में खड़े हैं तो उनके लिए थोड़ी दया व्यक्त कर देना काफ़ी नहीं है ; ज़रूरत है इन्हें बमुश्किल ज़िंदा रखते हुए इनके श्रम का इस्तेमाल करने के बाद उनका तिरस्कार करनी वाली व्यवस्था को बदलने के लिए संघर्ष करने की और इसके बजाए एक समतामूलक व्यवस्था क़ायम करने की। सामाजिक असमानता की क्रूरता दुनिया द्वारा धिक्कारे गये इन लोगों में दु:ख और ग़ुस्सा पैदा करती है।

शहरों में पलायन कर आए इन हज़ारों-लाख अनिश्चित श्रमिकों को जब सरकार तीन हफ़्ते के लिए घर पर बैठने के लिए कहती है तो क्या होता है ? ये वो मज़दूर हैं जिन्हें इतना वेतन नहीं मिलता कि वे बचत कर सकें, और इनके पास ये हफ़्ते गुज़ारने के लिए बेहद कम संसाधन हैं। सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से इन्हें खाद्द-सामग्री देने के प्रावधान को व्यवस्थित करना चाहिए। ट्राईकॉनटिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान के सुबिन डेनिस का **मानना** है कि मुफ्त कैंटीनों के माध्यम से भी इन्हें भोजन बाँटा जा सकता है। इस तरह की योजनाओं के अभाव में ये वैश्विक महामारी बड़े पैमाने पर होने वाली भुखमरी में बदल जाएगी। दूसरी ओर इस लॉकडाउन के चलते मज़दूरों की उपलब्धता में होने वाली गिरावट से सरसों, दाल, चावल, और गेहूं जैसी रबी फ़सलें ठीक से नहीं कट सकेंगी, इससे ग्रामीण इलाकों में और भी गहरा संकट उत्पन्न हो सकता है। भारत में सर्दियों की फसलों की विफलता भी प्रलय ही लाएगी।

सतीश गुजराल (1925-2020), निराशा, 1954.

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) का अनुमान है कि दुनिया भर में कम से कम ढाई करोड़ लोग कोरोनोवायरस के कारण अपनी नौकरी खो देंगे, और वे लगभग 34 ख़रब डॉलर की आय खो देंगे। लेकिन ILO के महानिदेशक गाय राइडर ने ये भी **कहा** है कि, 'ये अभी से ही स्पष्ट हो रहा है कि ये आँकड़े असल में होने वाली तबाही का बहुत छोटा हिस्सा होंगे'। कोरोना के आतंक के कारण **पहले** से ही 7करोड़ 10लाख लोग विस्थापित हो चुके हैं – हर दो सेकंड में एक व्यक्ति विस्थापित हो रहा है। कितने लोग अपना सब कुछ खो देंगे, इन संख्याओं का अनुमान लगाना लगातार मुश्किल हो रहा है। अर्थव्यवस्थाओं को बचाने वाले 'सहायता पैकेज' इन लोगों तक नहीं पहुँचते। सहायता पैकेज के नाम पर केंद्रीय बैंकों में से खरबों डॉलर निकाल कर वित्तीय संस्थानों और बड़ी कम्पनियों के खजाने में डाल दिए जाते हैं और अरबपतियों की

तिजोरियाँ भरने के लिए इस्तेमाल होते हैं। ये कोई चमत्कार ही है, कि स्वर्ग से आने वाला सारा पैसा इन अरबपतियों के आलीशान मकानों में ही रुक जाता है। इन हज़ारों लाखों विस्थापित मज़दूरों में से कोई भी इस पैसे का लाभ नहीं उठा पाएगा, क्योंकि 'सहायता पैकेजों के पैसे उन तक पहुँचते ही नहीं हैं।

कैफ़ी आज़मी (1919-2002) की नज़्में भारतीय किसानों और मज़दूरों की मिट्टी की गहराई को बयान करती हैं। उनकी उत्कृष्ट नज़्म 'मकान' भवन निर्माण मज़दूरों के लिए एक गीत है :

> *[illegible]*
> *[illegible]*
> *[illegible]*
> *[illegible]*

> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]

केरल —वाम लोकतांत्रिक मोर्चे की सरकार द्वारा शासित राज्य— इस विकराल दीवार में एक खिड़की है। केरल सरकार उन प्रवासी मज़दूरों के लिए हजारों शिविर बना रही है जिन्हें रहने की जगह की ज़रूरत है। 28 मार्च तक 4,603 शिविरों में 144,145 प्रवासी मज़दूर रहने लगे थे, अब और नए शिविर बनाए जा रहे हैं। सरकार बेघर और बेसहारा लोगों के लिए भी शिविर बना रही है – 44 शिविर अब तक खोले जा चुके हैं जिनमें 2,569 लोग रहने लगे हैं। सरकार ने मुफ्त में गर्म खाना उपलब्ध कराने के लिए राज्य भर में सामुदायिक रसोइयां खोली हैं; जो लोग इन रसोइयों तक नहीं जा सकते, उनके घरों में भोजन पहुंचाया जाता है।

आइए मिलकर दीवारें तोड़ें और खिड़कियां बनाएं।

स्नेह-सहित,

विजय।